Emerging Trends in Education [Vol. XII - No. 1 & 2. February & August 2025. pp 68-77]

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में जल संरक्षण की तकनीक : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

सर्वजीत कुमार पाल*

सार संक्षेप

हमारे देश में जल संसाधनों के प्रबन्धन का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल से ही भारतीयों ने सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ भारत की जलवायु, मिट्टी की प्रकृति और अन्य विविधताओं को ध्यान में रखकर बरसाती पानी, नदी–नालों, झरनों और जमीन के नीचे मिलने वाले, भूजल संसाधनों के विकास और प्रबन्धन के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की थी। इन उपलब्धियों के प्रमाण देश के कोने–कोने में उपलब्ध हैं। वस्तुतः ये प्रमाण यहाँ के लोगों के उन्नत ज्ञान, दूरदृष्टि और परिस्थितियों की बेहतरीन जानकारी को दर्शाते हैं तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक हैं। जल प्रबन्धन का पहला प्रमाण सिंधु घाटी में खुदाई के दौरान मिला। धौरावीरा में अनेक जलाशयों के प्रमाण इस बात को दर्शाते हैं कि इस समय भी जल संरक्षण को लेकर लोग सोचते थे। प्राचीन भारत में जल संरक्षण के लिए मौर्य काल एक नवीनतम तकनीकी वाला काल रहा, जहाँ लोग तालाब, बाँध इत्यादि से न केवल परिचित थे अपितु वर्षा के लक्षण, मिट्टी के प्रकार और जल प्रबन्धन के तरीकों को भी अच्छी तरह से जानते थे। पूर्व मध्यकाल में भी ये परंपरागत रूप से चली आ रही जल संरक्षण की विधियाँ समाज में जारी रहीं। इस काल में उत्तर भारत में राजपूत शासकों का वर्चस्व रहा जो विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई के लिए अथवा विनोद के भाव से तथा अपनी शक्ति प्रदर्शित करने के उद्देश्य से विशाल जलाशयों के निर्माण कराते रहे। विभिन्न क्षेत्रों के पुरातात्विक साक्ष्यों से नालियों कुओं, तालाबों एवं बांधों की उपस्थिति की पुष्टि भी होती है। इस शोध पत्र में पूर्व मध्य काल में जल संरक्षण के लिए किये गए उपायों की समीक्षा की जाएगी तथा पूर्व मध्यकाल के दौरान परम्परागत रूप से जल स्त्रोतों के निर्माण कार्यों को देखा जायेगा।

पृष्ठभूमि–

प्राचीन काल से ही भारत देश अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के सन्दर्भ में अपनी विशेष पहचान रखता है। यहाँ की परम्पराओं का समाज और संस्कृति में विशेष महत्त्व है। सतत विकास के जल मूलाधार तत्व है और सामाजिक आर्थिक विकास उर्जा और खाद्य उत्पादन, स्वस्थ्य पारिस्थिकी तंत्र और स्वयं सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व के लिए बेहद आवश्यक है। जलापूर्ति का महत्वपूर्ण साधन वर्षा है। समय पर बारिश से पानी की प्राकृतिक आपूर्ति सुनिश्चित नहीं थी अतः सिचाईं के लिए कुओं और नहरों की आवश्यकता होती थी। प्राचीन काल से ही वर्षा की कमी को किसी न किसी प्रकार की सिचाईं नदियों, नहरों, झीलों, टैंकों, कृतिम जलाशयों पोखरों

---

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय , वाराणसी।

आदि के माध्यम से दूर किया जाता रहा है। (Date, R. 2008) जल संचयन तथा जल प्रबंधन का मुख्य आधार इसकी धार्मिक एवं आर्थिक आवश्यकता है। ऋग्वेद में आवट (Macdonell A.A. & Keith AB, 1912) शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। इसका अर्थ कृत्रिम रूप से बनाया गया कुआं होता है। ये कुआं हमेशा पानी से भरा रहता था तथा निर्माताओं द्वारा इसे ढक दिया जाता था। पानी को पत्थर के एक पहिये द्वारा रस्सी की सहायता से बाल्टी द्वारा निकाल लिया जाता था। उसके बाद पानी लकड़ियों की एक बाल्टी (जिसे अहावा कहा जाता था) में डाल दिया जाता था। इन कुओं का उपयोग व्यापक स्तर पर सिचाईं के लिए किया जाता था। एक अन्य शब्द किपा का उल्लेख ऋग्वेद में ही दिखाई देता है। इसका अर्थ कृत्रिम गड्ढा होता था जो एक कुँए को ही दर्शाता है। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि

या आपो दिव्या उत वा स्त्रवान्ति खनित्रिमा उत वाप या स्वयेय्जा।
समुन्द्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह माम्वान्तु।।(Sharma G.S.,2016)

ऋ.7.49.2

खनित्रिमा शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में खुदाई द्वारा निर्मित कुएं के सन्दर्भ में मिलता है। यह कृत्रिम रूप से जल संचयन के लिए बनाये गये जलाशय को उद्धत करता है। इस कुएँ से जल का उपयोग सिंचाईं करने के लिए किया जाता है।(Macdonell A.A. & Keith AB 1912) कीथ के अनुसार ऋग्वेद में ही हमें सिंचाई के लिए नहरें निकाले जाने के उल्लेख प्राप्त होने शुरू हो जाते हैं। (झा एवं श्रीमाली 1981)। ऋग्वेद में ही वर्णन मिलता है कि जो जल अंतरिक्ष से उत्पन्न होते हैं, नदी के रूप में बहते हैं, जो खोद कर निकाले जाते हैं, अथवा जो अपने आप उत्पन्न होकर सागर की ओर गति करते हैं, जो दिप्तियुक्त एवं पवित्र करने वाले हैं, वे देवी रूपी जल यहाँ हमारी रक्षा करें। (Sharma,4.5.2016) प्राचीन काल में कुछ अपराधों के शुद्धिकरण के लिए जल का प्रयोग किया जाता था। (Sharma R, 2017)। अग्निपुराण में लिखा है कि कृषि की वृद्धि के लिए सिचाईं के साधनों को जुटाना राज्य के आठ कर्तव्यों में एक प्रमुख कर्तव्य है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्यों में भी अरघट्ट और अरघट्ट खीचने वाले लोगों अरघत्तियनर का उल्लेख मिलता है (Habib Irfon 2018)।

अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण जल को राज्य की संपत्ति बताया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार सिंचाई के विकास के लिए राज्य को सिंचाई प्रणालियों को विकसित करना चाहिए (Sharma, R, 2017)। इसके बदले राज्य सिंचाई कर लगाता था। जो लोग स्वयं अपने प्रयास से सिंचाई के निमित्त जलाशय या जल स्रोत बनवाते थे, राज्य उनके करों के भुगतान में छूट प्रदान कर सकता था। अर्थशास्त्र में प्राकृतिक जलाशयों से पानी निकालकर सिंचाई करने पर राज्य कुल उपज की एक चौथाई दर से सिंचाई कर लगाता था (Rangrajan,1992)। पद्मपुराण में कहा गया है कि जल एक सद्वस्तु है। उसमें स्नान करने अथवा उसके दर्शन करने मात्र से बाहर तथा अंतर्मन के पाप धुल जाने के कारण मुनि लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। प्राणिमात्र जल पीते रहने से दीर्घायु होते हैं (Yadav, 2009)। बृहत्संहिता के अनुसार जहाँ जल हो, चाहे वो किसी के द्वारा बनाये गये जल

स्त्रोत में उपलब्ध हो अथवा प्रकृति से ही बने जलाशयों में संरक्षित हो, और उत्तम वायु हो, ऐसे स्थानों पर देवता निवास करते हैं (Dabral, 2015)। महाभारत में वर्णित है कि पृथ्वी पर कुछ भाग विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन महत्वपूर्ण भाग में जलाशय सबसे विशेष हैं (Yadav, 2009)। शुक्रनीति में वर्णन मिलता है कि राजा के महल में पीने और नहाने के लिए अपने स्वयं के कुंड और पानी की व्यवस्था होनी चाहिए। इस ग्रंथ में जलयंत्र का भी उल्लेख मिलता है। जलयंत्र के माध्यम से कुएं से जल निकालकर महल के विभिन्न हिस्सों में पानी पहुंचाने की व्यवस्था थी। पद्म पुराण में भी जलयंत्रगृह का उल्लेख मिलता है। जलयंत्रगृह का अर्थ कुएं से मशीनों द्वारा पानी खींचने के लिए घर था। उर्ध्वार्धर दिशा में पानी खींचने के लिए यह विधि सुविधाजनक थी। अतः कुएं, टैंक से अच्छे तरीके से पानी निकाला जा सकता था। 11वीं सदी की पुस्तक कृषिपरासर में वर्षा के पूर्वानुमान की जानकारी मिलती है। दिनों से मौसम का अनुमान लगाकर वर्षा की भविष्यवाणी की जाती थी। इस प्रकार के भविष्य के वर्षा के आधार पर जलाशयों में जल संरक्षित कर लिया जाता था तथा अपने दैनिक जीवन व कृषि संबंधी आवश्यकता को पूरा किया जाता था। खुयां नामक इंजीनियर ने अपने परिश्रम एवं कौशल से बांध निर्माण की अद्यतन तकनीकी विकसित की थी। उसने झेलम नदी के पानी, जो अत्यधिक बहाव क्षेत्र में फैल जाता था, को बड़े बोल्डरों के माध्यम से बांध बनाकर रोक दिया। फिर उसने इस क्षेत्र को साफ करवाया तथा पत्थरों से तटबंधों का निर्माण कराकर बांध का पानी खोल दिया (Date, 2008। इसी प्रकार जहाँ उसने कहीं भी झेलम नदी में बाढ़ से विनाश की स्थिति देखी वहां उसने बांध का एक चैनल बना दिया। इन बांधों से प्रत्येक गांव में सिंचाई के लिए जल आपूर्ति की सुविधा प्रदान की जाती थी। नहरों के माध्यम से प्रत्येक गांव में उसके द्वारा पानी पहुंचाया जाता था।

पूर्व मध्यकालीन काल ईसा की छठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक माना जाता है। इस दौरान उत्तर भारत में विभिन्न शासकों ने राज्य किया, जिनमें हर्षवर्धन का शासन, और राजपूत राज्यों का उदय एवं विकास शामिल है। जल स्रोतों का निर्माण इस काल में एक महत्वपूर्ण पहलू था क्योंकि यह न केवल खेती के लिए, बल्कि दैनिक जीवन, धार्मिक अनुष्ठानों, और सैन्य आवश्यकताओं के लिए भी आवश्यक था। उत्तर भारत में जल संरक्षण की समझ विभिन्न समाजों और संस्कृतियों में गहराई से निहित थी। इस समयावधि में, जल संसाधनों के प्रबंधन और संरक्षण के लिए विभिन्न तकनीकों और पद्धतियों का विकास और कार्यान्वयन किया गया था। जल स्रोतों को बचाने और उनका समुचित उपयोग सुनिश्चित करने के लिए समुदायों ने कई अनोखी और अभिनव व्यवस्थाएँ अपनाईं। उदाहरण के लिए, बावड़ी या बावली (सीढ़ीदार कुआं), जल संचयन की एक प्राचीन पद्धति थी, जिसका उपयोग न केवल जल संरक्षण के लिए, बल्कि सामाजिक और धार्मिक कार्यक्रमों के लिए भी किया जाता था। चालुक्य शासकों के समय ग्यारहवीं सदी में बनायीं गई रानी की वाव जल संरक्षण की इसी प्रकार की एक संरचना है। इसी तरह, तालाब, झीलें और कूप जैसी जल संचयन संरचनाओं का निर्माण और रखरखाव समुदाय द्वारा किया जाता था। इसके अलावा, नहरी सिंचाई की प्रणाली को भी महत्वपूर्ण माना जाता

था। इसमें नदियों और जल स्रोतों से पानी को खेतों तक पहुँचाने के लिए नहरों का निर्माण शामिल था, जिससे कृषि के लिए जल उपलब्धता सुनिश्चित होती थी।

इस दौरान उत्तर भारत में जल संरक्षण एक महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय पहल थी। जल संरक्षण का प्रमुख उद्देश्य जल संचयन, समुद्री संसाधनों का प्रबंधन, और जल संचयन के साधनों का प्रयोग करना था। इसका मूल उद्देश्य बाढ़, सूखा, और अन्य प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना था। इस काल में, जल संरक्षण का संकल्प समुद्री, नदी जल, और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करने पर आधारित था। पूर्व मध्यकाल में, प्रतिहार, परमार और चाहमान तथा चंदेल इत्यादि शासकों ने नदी जल का संचयन किया, तालाब, कुएं, और बांध निर्मित किए, जो किसानों को जल संचयन के लिए उत्साहित करने में मदद करते थे। उदहारण के लिए चौहान शासक अर्णोराज ने अनाजी सागर तथा बीसल देव ने बीसलसर का निर्माण कराकर किसानों को जल संकट से राहत दिलाई (Gupta, 2012)। गुप्तकाल के उत्तराधिकारी राजवंशों के समय में, जल संरक्षण के लिए नहरों और बांधों का निर्माण किया गया, जिनसे खेती में पानी की आपूर्ति सुनिश्चित होती थी। इस समय में, जल संचयन को बढ़ावा दिया गया, जिससे भूमि का उपयोग करने की अधिक संभावना थी। राजपूत शासकों के शासनकाल में, जल संरक्षण की नई पहल की गई। इस समय में, बड़े बांधों का निर्माण किया गया, जिससे नदियों का प्रबंधन किया जा सकता था। इसके अलावा, तालाबों का निर्माण भी बढ़ाया गया, जो जल संचयन के लिए महत्वपूर्ण थे।

पूर्व मध्ययुगीन जल प्रबंधन तकनीकों का ऐतिहासिक अध्ययन –

पूर्व मध्ययुगीन भारत के दौरान, जल प्रबंधन तकनीकों ने कृषि प्रधान समाजों को बनाए रखने और शहरी विकास को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अवधिके दौरान जल प्रबंधन तकनीकों का एक अवलोकन इस प्रकार है–

टैंक सिंचाई प्रणाली – कृत्रिम जलाशयों या टैंकों से युक्त टैंक सिंचाई प्रणालियाँ प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में प्रचलित थीं। इन टैंकों का निर्माण आमतौर पर जमीन में गड्ढे खोदकर और उन्हें वर्षा जल और सतही अपवाह को संग्रहित करने के लिए मिट्टी के तटबंधों से बांधकर किया जाता था। वे सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण जल स्रोतों के रूप में कार्य करते थे, विशेषकर शुष्क मौसम के दौरान। वर्तमान हरियाणा में स्थित सूरज कुण्ड, जिसका निर्माण महाराजा सूरजपाल तोमर ने आठवीं शताब्दी में करवाया था, इस प्रकार की सिचाईं प्रणाली का स्त्रोत था। इस कुण्ड को अनंग बांध से जोड़कर सिचाईं के लिए प्रयोग में लाया जाता था।

नहर– पूर्व मध्ययुगीन भारत में नदियों और जलाशयों से कृषि क्षेत्रों तक पानी वितरित करने के लिए नहरों और सिंचाई नेटवर्क का निर्माण देखा गया। अक्सर शाही संरक्षण में बनाई गई इन नहरों से खेती के विस्तार और कृषि उत्पादकता में वृद्धि में मदद मिली। प्रायद्वीपीय भारत में राष्ट्रकूटों और चालुक्यों द्वारा नहरों के निर्माण से शुष्क क्षेत्रों को उपजाऊ कृषि भूमि में बदलने में मदद मिली। भारतीय प्रदेशों में नहरों का उल्लेख ऋग्वेद से ही मिलना प्रारंभ हो जाता है।

कश्मीर में लिखा गया ग्रन्थ राजतरंगिणी में भी नहरें बनाने के उल्लेख मिलते हैं। खुयाँ नाम के एक अभियांत्रिक ने झेलम नदी से नहरों का एक जाल बना कर अपने राज्य में सिचाईं के लिए जल की उपलब्धता को सुनिश्चित किया।

जल उठाने वाले उपकरण – सिंचाई प्रयोजनों के लिए भूजल निकालने के लिए विभिन्न जल उठाने वाले उपकरणों का उपयोग किया गया था। इनमें फारसी पहिया (रहट) या चरखी प्रणाली शामिल थी, जो मानवीय शक्ति या पशु शक्ति द्वारा संचालित की जाती थी। इन उपकरणों ने किसानों को कुओं से भूजल तक पहुंचने और सिंचाई चैनलों के माध्यम से खेतों में वितरित करने में सक्षम बनाया। पूर्व मध्यकाल तक इस प्रणाली का प्रचलन व्यापक स्तर तक हो चुका था।

जल संरक्षण तकनीकें – पूर्व मध्ययुगीन भारतीय समाजों ने मिट्टी के कटाव को रोकने, वर्षा जल के संरक्षण और भूजल के पुनः भंडारण के लिए एक सामान ऊचाई पर बांध, सीढ़ीदार और चेक बांध जैसी जल संरक्षण तकनीकों को भी विकसित किया। सीमित जल संसाधनों का कुशलतापूर्वक दोहन करने के लिए ये तकनीकें पहाड़ी और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण थीं।

बाँध – बांध, जिन्हें चेक डैम के रूप में भी जाना जाता है, जल प्रवाह को नियंत्रित करने और मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए नदियों और नालों पर बनाए गए थे। ये कम ऊंचाई वाले बांध स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री जैसे पत्थर, मिट्टी और लकड़ी के लट्ठों का उपयोग करके बनाए गए थे। बंधों ने वर्षा जल को बनाए रखने, भूजल को फिर से भरने और सिंचाई उद्देश्यों के लिए जलाशय बनाने में मदद की। वे सूखे और पानी की कमी वाले क्षेत्रों में पानी के संरक्षण के लिए आवश्यक थे। वर्षा जल संचयन विशेष रूप से शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में प्रचलित था जहाँ जल संसाधन सीमित थे। एकत्रित वर्षा जल का उपयोग घरेलू कामों, पशुधन और सिंचाई के लिए किया जाता था।

कुआं – घरेलू और कृषि प्रयोजनों के लिए भूजल तक पहुंच के लिए कुएं खोदे गए। बावड़ियों के समान लेकिन कम गहराई वाली बावलियों का निर्माण भी समुदायों को पानी उपलब्ध कराने के लिए किया गया था। ये पारंपरिक जल स्रोत ग्रामीण बस्तियों के लिए आवश्यक थे और प्रारंभिक मध्ययुगीन उत्तर भारत में जल संसाधनों के स्थायी प्रबंधन में योगदान करते थे।

झालरा– झालरा किसी नदी या तालाब के पास आयताकार टैंक होता था जो धार्मिक कार्यों को संपन्न करने के लिए बनाया जाता था। इसके अलावा भी ये झालरा कई प्रकार के कार्यों के लिए प्रयोग में लाये जाते थे। कुछ ऐसे जल स्त्रोत होते हैं जिनमे संचित जल का उपयोग व्यक्ति पेयजल के रूप में नहीं कर सकता है। झालरा जल संचयन का ऐसा ही एक जलस्त्रोत था। इन झालरों में तर्पण कार्य, मृत्युपरांत स्नान आदि का कार्य किया जाता था। वर्तमान राजस्थान में जोधपुर शहर के आस– पास आज भी लगभग आठ झालरे बेहद आकर्षित करते हैं (व्यास, 2021)।

कुण्ड – देश के विभिन्न हिस्सों में कुंड देखे जा सकते हैं। कुडं निजी भी होते हैं और सार्वजनिक भी। निजी कुंड पानी के ज्यादा संग्रहण के लिए घर में आवश्यकतानुसार गड्ढा खोदकर उसे चूने इत्यादि से पक्का कर ऊपर गुम्बद या ढक्कन बनाकर ढँक दिया जाता था। पानी को साफ स्वच्छ और उपयोग लायक बनाये रखने के लिए तल में राख और चूना भी लगाया जाता था, ताकि पानी में कीटाणु आदि न जन्में। कुण्ड घर के वाटर टैंक की तरह होता था। सार्वजनिक कुण्ड ढकें हुए भी होते थे और खुले हए भी। कुण्डों का इस्तेमाल पानी पीने, नहाने आदि में किया जाता था। कुण्डों की गहराई आवश्यकतानुसार बनवाई जाती थी। इनकी गहराई इतनी सी भी हो सकती थी कि झुककर किसी भी पात्र से इनमें से जल निकाला जा सके।

जल संसाधन प्रबंधन में सम्राटों की भूमिका –

पूर्व मध्ययुगीन भारत के दौरान, राजाओं ने जल संसाधन प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि उनके पास जल बुनियादी ढांचे के निर्माण, रखरखाव और विनियमन की देखरेख के लिए काफी अधिकार और संसाधन थे। जल प्रबंधन में उनकी भागीदारी कृषि प्रधान समाजों को बनाए रखने, आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा देने और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक थी। इस अवधि के दौरान राजाओं ने जल संसाधन प्रबंधन में कई तरीकों से योगदान दिया।

बुनियादी ढांचे का विकास – बड़े पैमाने पर जल बुनियादी ढांचा परियोजनाओं, जैसे जलाशयों, टैंकों, नहरों और सिंचाई नेटवर्क के निर्माण को शुरू करने में राजाओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने इन परियोजनाओं के लिए वित्तीय और भौतिक सहायता प्रदान की, अक्सर शाही फरमानों या संरक्षण के माध्यम से श्रम और संसाधन जुटाए। इन पहलों का उद्देश्य कृषि उत्पादकता को बढ़ाना, शहरी विकास को समर्थन देना और कमी के दौरान पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करना था। राजाओं ने नियामक उपायों और प्रशासनिक संस्थानों के माध्यम से जल संसाधनों पर अधिकार का प्रयोग किया। उन्होंने पानी के उपयोग, वितरण और स्वामित्व को नियंत्रित करने वाले कानून और नीतियां बनाईं, जिससे जल संसाधनों तक समान पहुंच सुनिश्चित हुई और समुदायों के बीच विवादों का समाधान हुआ। चंदेल शासकों ने सम्पूर्ण बुंदेलखंड को मंदिरों और पक्की झीलों से सजा दिया (त्रिपाठी 1971)। सम्राटों ने जल–संबंधी गतिविधियों की निगरानी करने और जल प्रणालियों के कुशल कामकाज को सुनिश्चित करने के लिए, नियमों को लागू करने के लिए जल प्रबंधकों और नहर पर्यवेक्षकों जैसे अधिकारियों को नियुक्त किया।

सार्वजनिक कार्य व धार्मिक–सांस्कृतिक महत्त्व – राजाओं ने अपनी परोपकारिता प्रदर्शित करने और सार्वजनिक कल्याण को बढ़ावा देने के साधन के रूप में जल प्रबंधन से संबंधित सार्वजनिक परियोजनाओं को बढ़ावा दिया। उन्होंने बावड़ियों, टैंकों और अन्य जल संरचनाओं का निर्माण करवाया अक्सर इन स्मारकों पर शाही संरक्षण के प्रतीक के रूप में उनके नाम या

उपाधियाँ अंकित की गईं। राजाओं ने व्यापार मार्गों और तीर्थ स्थलों पर धर्मशालाओं (विश्राम गृह) और भंडारों (सार्वजनिक जल औषधालय) की स्थापना का भी समर्थन किया, जिससे यात्रियों और तीर्थयात्रियों को आवश्यक सेवाएं प्रदान की गईं। राजाओं द्वारा की गई जल प्रबंधन पहलों का अक्सर धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व होता था, जो भारतीय समाज में पानी और आध्यात्मिक विश्वासों के बीच अंतर्संबंध को दर्शाता है। गोंड राजाओं के समय जो भी व्यक्ति तालाब का निर्माण कराता था उसे लगान से मुक्त कर दिया जाता था (मिश्र, 2009)। राजाओं ने पानी को पवित्र और शुद्ध करने वाला मानते हुए मंदिरों व अन्य धार्मिक स्थलों के पास जल संरचनाओं के निर्माण को प्रायोजित किया। इन परियोजनाओं ने धर्मपरायणता और भक्ति के रूप में कार्य किया, जिससे जनता की आध्यात्मिक भलाई में योगदान हुआ।

रक्षा और सुरक्षा के दृष्टिकोण से जल संरक्षण कार्य – शासकों ने रक्षा और सुरक्षा उद्देश्यों के लिए जल संसाधनों के रणनीतिक महत्व को पहचाना। उन्होंने टैंकों और जलाशयों जैसे जल निकायों को तोड़फोड़ या दुश्मन की घुसपैठ से बचाने के लिए उन्हें मजबूत किया। राजाओं ने नदी तटों और नहरों के किनारे किलेबंदी में भी निवेश किया, जिससे महत्वपूर्ण जल बुनियादी ढांचे की सुरक्षा और बाहरी खतरों से सुरक्षा सुनिश्चित की गई। उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने के लिए पर्यावरण संरक्षण और टिकाऊ जल प्रबंधन प्रथाओं की वकालत की। उन्होंने पारिस्थितिक स्वास्थ्य और मानव कल्याण के बीच परस्पर निर्भरता को पहचानते हुए वनों की कटाई, मिट्टी के कटाव और जल प्रदूषण को रोकने के उपाय लागू किए। जल संसाधनों पर पर्यावरणीय गिरावट के प्रभाव को कम करने के लिए उन्होंने सूखा प्रतिरोधी फसलों की खेती, वनीकरण प्रयासों और मिट्टी संरक्षण तकनीकों को बढ़ावा दिया।

जल संरक्षण पर धर्म और संस्कृति का प्रभाव –

प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में जल संरक्षण प्रथाओं पर धर्म और संस्कृति का गहरा प्रभाव था। जल न केवल जीविका के लिए आवश्यक था, बल्कि आध्यात्मिक महत्व भी रखता था, धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ जल प्रबंधन के प्रति दृष्टिकोण को आकार देती थीं। यहां ऐसे कई तरीके हैं जिनसे धर्म और संस्कृति ने इस अवधि के दौरान जल संरक्षण को प्रभावित किया।

पवित्र नदियाँ और जल निकाय – गंगा, यमुना, सरस्वती और गोदावरी जैसी नदियाँ हिंदू धर्म में पवित्र मानी जाती थीं, और माना जाता था कि उनके जल में शुद्ध करने वाले गुण होते हैं। इन नदियों और उनसे जुड़े जल निकायों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए एक मजबूत सांस्कृतिक अनिवार्यता थी। इन नदियों के किनारे रहने वाले समुदायों ने जल संसाधनों के प्रति श्रद्धा और समर्पण की भावना को बढ़ावा देते हुए, उन्हें सम्मान देने और पूजा करने के लिए अनुष्ठान और समारोह विकसित किए।

धार्मिक त्यौहार और अनुष्ठान – धार्मिक त्यौहारों और अनुष्ठानों में अक्सर पानी से संबंधित गतिविधियाँ शामिल होती हैं, जैसे अनुष्ठान स्नान, मूर्तियों का औपचारिक विसर्जन (विसर्जन),

और नदियों और तालाबों में प्रार्थना करना। इन प्रथाओं ने पानी के सांस्कृतिक महत्व को सुदृढ़ किया और इसकी शुद्धता और प्रचुरता को बनाए रखने के महत्व को रेखांकित किया। धार्मिक अनुष्ठानों को सुविधाजनक बनाने और जल संरक्षण प्रयासों में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए राजाओं और धार्मिक संस्थानों ने घाटों (नदी के किनारे के कदम) और मंदिर के टैंक (कुंड) के निर्माण और नवीनीकरण को प्रायोजित किया।

जल संरक्षण संरचनाएँ – कई जल संरक्षण संरचनाएँ, जैसे बावड़ियाँ टैंक और जलाशय मंदिरों, मस्जिदों और अन्य धार्मिक स्थलों के पास बनाए गए थे। ये संरचनाएँ व्यावहारिक और प्रतीकात्मक दोनों उद्देश्यों को पूरा करती थीं, अनुष्ठानिक स्नान और पीने के लिए पानी उपलब्ध कराती थीं और साथ ही शासकों और धार्मिक संरक्षकों की उदारता का प्रतीक भी थीं। इन संरचनाओं की स्थापत्य सुंदरता और आध्यात्मिक महत्व ने समुदायों को इन्हें पवित्र विरासत स्थलों के रूप में संरक्षित और बनाए रखने के लिए प्रेरित किया।

सामुदायिक भागीदारी और सहयोग – धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थानों ने जल संरक्षण पहल के लिए सामुदायिक समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मंदिर, मठ और धार्मिक बंदोबस्त अक्सर जल संसाधनों का प्रबंधन करते थे और जल बुनियादी ढांचे के रखरखाव के लिए धन आवंटित करते थे। सामुदायिक नेतृत्व वाली पहल, जैसे सामुदायिक कुओं का निर्माण और जल–बंटवारे की व्यवस्था (पत्तल) का आयोजन, ने आम भलाई के लिए जल संसाधनों के प्रबंधन में सामूहिक कार्रवाई और सहयोग को बढ़ावा दिया।

प्रतीकवाद और पौराणिक कथाएँ – जल संरक्षण प्रथाओं को अक्सर प्रतीकवाद और पौराणिक कथाओं से जोड़ा जाता था, जो पानी के आसपास की सांस्कृतिक मान्यताओं और आख्यानों को दर्शाते थे। उदाहरण के लिए, हिंदू पौराणिक कथाओं में समुद्र मंथन की कहानी अमरता के अमृत के लिए देवताओं और राक्षसों के बीच लौकिक संघर्ष का प्रतीक है, जो जीवन और कायाकल्प के स्रोत के रूप में पानी के पवित्र महत्व को उजागर करती है।

वर्तमान परिदृश्य में पूर्व मध्यकालीन जलस्त्रोत निर्माण एवं जल संरक्षण का प्रभाव– आधुनिक भारत पर पूर्व मध्ययुगीन जल संरक्षण प्रथाओं का प्रभाव महत्वपूर्ण और बहुआयामी है। वर्तमान समय में सदियों पहले की प्रथाओं और समसामयिक मुद्दों के बीच संबंध स्थापित करने की कोशिश की गई है। जल संरक्षण के सिद्धांतों की प्रासंगिकता कालातीत है।

पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ– भारत में कई प्रारंभिक मध्ययुगीन सभ्यताएँ, जैसे कि सिंधु घाटी सभ्यता, जल संचयन और प्रबंधन की परिष्कृत प्रणालियों को नियोजित करती थीं। बावड़ियाँ, तालाब और जलाशय बनाने जैसी तकनीकें आम थीं। इन प्रथाओं ने भारत में आधुनिक जल संरक्षण रणनीतियों की नींव रखी, वर्षा जल संचयन और चेक बांधों के निर्माण जैसी प्रेरक पहल की।

समुदाय–आधारित प्रबंधन– प्रारंभिक मध्ययुगीन जल संरक्षण प्रयासों में अक्सर जल संसाधनों के प्रबंधन के लिए पूरे समुदाय को एक साथ काम करना शामिल होता था। जल प्रबंधन के लिए यह समुदाय–केंद्रित दृष्टिकोण आधुनिक भारत में समुदाय–आधारित वाटरशेड

प्रबंधन कार्यक्रमों जैसी पहलों के माध्यम से प्रतिध्वनित होता है। जल के संरक्षण और प्रबंधन में स्थानीय समुदायों को शामिल करके, ये पहल स्थिरता को बढ़ावा देती हैं और सुनिश्चित करती हैं कि जल संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाए।

जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रति अनुकलून– भारत हमेशा से जलवायु परिवर्तनशीलता से ग्रस्त रहा है, जिसमें सूखा और अनियमित वर्षा शामिल है। प्रारंभिक मध्ययुगीन सभ्यताओं ने इन चुनौतियों से निपटने के लिए जल संरक्षण तकनीकों का विकास किया, जैसे कि सूखे के दौरान उपयोग के लिए प्रचुर मात्रा में पानी को संग्रहीत करने के लिए भूमिगत भंडारण टैंक का निर्माण करना। इसी प्रकार, आधुनिक भारत को जलवायु परिवर्तन के कारण समान चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, और प्रारंभिक सभ्यताओं से सीखे गए अनुकूली जल प्रबंधन के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व– भारत में पानी का गहरा सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व है, जैसा कि गंगा जैसी नदियों को दी गई श्रद्धा से पता चलता है। प्रारंभिक मध्ययुगीन समाजों ने न केवल व्यावहारिक कारणों से बल्कि उनके आध्यात्मिक महत्व के लिए भी जल स्रोतों के संरक्षण के महत्व को पहचाना। पवित्र नदियों और जल निकायों की सुरक्षा और संरक्षण के प्रयासों के साथ, जल संरक्षण के प्रति यह सांस्कृतिक रवैया आधुनिक भारत को प्रभावित करना जारी रखता है।

शहरी नियोजन और बुनियादी ढाँचा– भारत में प्रारंभिक मध्ययुगीन शहरों की योजना अक्सर जल निकायों के आसपास बनाई गई थी और उनमें जल आपूर्ति और स्वच्छता के लिए जटिल प्रणालियाँ थीं। इन ऐतिहासिक शहरी नियोजन प्रथाओं ने भारत में आधुनिक शहरी विकास रणनीतियों को प्रभावित किया है, जिसमें तेजी से बढ़ते शहरों में स्थायी जल प्रबंधन पर नए सिरे से ध्यान केंद्रित किया गया है।

निष्कर्ष– पूर्व मध्ययुगीन उत्तर भारत में जल संरक्षण एक बहुआयामी प्रयास था जिसमें तकनीकी नवाचार, सामुदायिक भागीदारी और सांस्कृतिक प्रथाओं का एकीकरण शामिल था। परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों के बीच क्षेत्र में कृषि समाज के अस्तित्व के लिए ये प्रयास आवश्यक थे। मध्ययुगीन उत्तर भारत में ये पारंपरिक जल संरक्षण विधियाँ पानी की कमी की चुनौतियों को स्थायी तरीके से अपनाने और कम करने में प्राचीन समाज की सरलता और संसाधनशीलता का प्रमाण थीं। मध्ययुगीन उत्तर भारत में राजाओं ने जल संसाधन प्रबंधन में बहुआयामी भूमिका निभाई, अपने क्षेत्र के कल्याण के लिए जल संसाधनों के उपयोग और संरक्षण को नियंत्रित करने के लिए राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव डाला। स्वदेशी ज्ञान, तकनीकी नवाचार और सामुदायिक भागीदारी में निहित ये समाधान, पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने और मध्ययुगीन उत्तर भारत में पानी की कमी को कम करने में सहायक थे। वे समकालीन जल प्रबंधन प्रथाओं और सतत विकास प्रयासों के लिए मूल्यवान सबक प्रदान करते हैं। पूर्व मध्यकालीन जल स्त्रोत निर्माण की तकनीकों को अपनाकर हम समकालीन जल चुनौतियों का समाधान करने, सतत विकास को बढ़ावा देने और भविष्य की पीढ़ियों के लिए जल

संसाधनों की सुरक्षा के लिए ऐतिहासिक जल संरक्षण प्रथाओं में निहित ज्ञान के धन को संरक्षित करके और लाभ उठा सकते हैं। आधुनिक भारत पर पूर्व मध्ययुगीन जल संरक्षण प्रथाओं का प्रभाव गहरा है। ये प्राचीन तकनीकें और सिद्धांत समकालीन जल प्रबंधन रणनीतियों को आकार देना जारी रखते हैं, जो देश की जल चुनौतियों से निपटने के लिए टिकाऊ और लचीले दृष्टिकोण में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- गुप्ता, मोहनलाल . (2012) . अजमेर का बृहत् इतिहास(650–1200ईस्वी.),राजस्थानी ग्रन्थाकार प्रकाशन ।
- झा, डी. एन., एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन. (1981). प्राचीन भारत का इतिहास. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय ।
- डबराल, शिव प्रसाद. (2015). श्री उत्तराखंड यात्रा दर्शन, डिजिटल लाइब्रेरी इंडिया।
- मिश्र, अ. (2006). बुद्धकालीन सामाजिक आर्थिक जीवन. विश्वविद्यालय प्रकाशन. ।
- मिश्र, अनुपम. (2009). आज भी खरे हैं तालाब. वाणी प्रकाशन ।
- यादव, राजेंद्र सिंह. (2009). बैतूल जिले का पुरातत्व, प्रांजल प्रकाशन ।
- व्यास, रितेश (2021) – जल स्त्रोतों के निर्माण की तकनीक और महत्त्व. राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी ।
- हबीब, इरफान. (2018). मध्यकालीन भारत में प्रोद्योगिकी, राजकमल प्रकाशन।
- त्रिपाठी, रमाशंकर (1971) – प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास ।
- Date, R. (2008–2009). Water management in ancient India. 68/69, 377–382.
- Macdonell, A. A., & Keith, A. B. (1912). Vedic index of names and subjects (Vols. 1–2). John Murray.
- Mankodi, K. (2012). Rani ki Vav, Patan. Archaeological Survey of India.
- Rangarajan, L. N. (1992). Kautilya: The Arthashastra. Penguin Books.
- Sharma, G. S. (Ed.). (2016). Rigved (1st ed.). Sanskrit Sahitya Prakashan.
- Sharma, R. (2017). Water law in ancient India. Innovation: The Research Concept, 2, 116–121.
- Sharma, Y. D. (1974). Delhi and its Neighborhood. Archaeological survey of India.